वर्ष : ३३

मूल्य : १०.०० रूपये

तित्थयर

अंक : १०

जनवरी २०१०

॥ जैन भवन ॥

With Best Complements :

मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय,
कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है।

कमल सिंह करनावट
अध्यक्ष

विनोद चंद बोथरा
कोषाध्यक्ष

गौतम दूगड़
सचिव

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट
कोलकाता - ७०० ००७
फोन नं. : २२६८-२६५५, २२७२-९०२८
E-mail : jainbhawan@bsnl.in

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३३ अंक - १० जनवरी २०१०

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिये
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@bsnl.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें —
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 2000.00,

Published by Smt. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and Printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 007 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा,

॥ जैन भवन ॥

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	संसारी जीवों का स्वरूप		४०७
२.	गृहस्थ धर्म	पू० श्री जवाहरलालजी म. सा.	४१९
३.	हरिश्चन्द्र-तारा		४२९

कवरपृष्ठ : पुरुलिया जिले का प्राचीन सराक जैन मन्दिर

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

संसारी जीवों का स्वरूप

ओराला तसा जे उ, चउहा ते पकित्तिया।
बेइंदिया तेइंदिया, चउरो पंचिंदिया चेव ।।२३

— उत्त० अ० ३६, गा० १२६

प्रधान त्रस जीव चार प्रकार के कहे गये हैं- (१) दो इन्द्रियवाले, (२) तीन इन्द्रियवाले, (३) चार इन्द्रियवाले और (४) पाँच इन्द्रियवाले।

बेइंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे।।२४
किमिणो सोमंगला चेव, अलसा माइवाहया।
वासीमुहा य सिप्पीया, संखा संखणगा तहा।।२५
पल्लोयाणुल्लया चेव, तहेव च बराडगा।
जलूगा जालगा चेव, चंदणा य तहेव य ।।२६
इइ वेइंदिया एए, ऽणेगहा एवमायओ।
लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया।।२७

— उत्त० अ० ३६, गा० १२७ से १३०

दो इन्द्रियोंवाले जीव दो प्रकार के होते हैं- पर्याप्त और अपर्याप्त।

कृमि (अशुचिमय पदार्थों में उत्पन्न होनेवाले), सुमंगल, अलसिया, मातृवाहक (कनखजूरा), वासीमुख, छिपकली, शंख, घोंघा, पल्लक, अनुपल्लक, कोड़ी, जलौका, जालक, चंदनक (स्थापनाचार्य में रखा जाता है) आदि।

ये दो इन्द्रियवाले जीव अनेक प्रकार के हैं। ये सब लोक के एक भाग में स्थित कहे गये हैं, न कि सर्वत्र।

विवेचन– जिन्हें सामान्यतया जन्तु अथवा कीड़े (Worms and insects) कहते हैं, उनका समावेश, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले और चतुरिन्द्रियवाले जीवों में होता है।

तेइंदिया उ जे जीवा, तुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे।।२८
कुंथु-पिवीलिया दंसा, उल्कलुद्देहिया तहा।।
तणहारकट्ठहारा य, मालूगा पत्तहारका।।२९
कपासट्ठिमिंजा य, तिंदुगा तउस मिंजगा।।
सदावरी य गुम्मी य, बोधव्वा इंदगाइया।।३०
इंदगोवमाइया, ऽणेगहा एवमायओ।।
लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया।।३१

—उत्त० अ० ३६, गा० १३६ से१३९

तीन इन्द्रियवाले जीव दो प्रकार के कहे गये हैं– पर्याप्त और अपर्याप्त।

कुँथु, चींटी, डांस, उत्कल, उदई, तृणाहारक (घास में होनेवाले) काष्ठाहारक (लकड़ी में होनेवाली, धुन), मालुका, पत्राहारक (पत्तो में होनेवाले), कार्पासिक (कपास आदि के होनेवाले), अस्थिजात (गुटली-गुटले आदि में होनेवाले), तिन्दुक, त्रपुष, मिंजग, शतावरी गुल्मी, इन्द्रकायिक आदि।

इन्द्रगोप (गोकुलगाय) आदि तीन इन्द्रियवाले, जीव अनेक प्रकार के हैं, वे लोक के एक भाग में कहे गये हैं, न कि सर्वत्र।

चउरिंदिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे।।३२
अंधिया पुत्तिया चेव, मच्छिया मसगा तहा।
भमरे कीड-पयंगे य, ढिंकुणे कुंकणे तहा।।३३

कुकुडे सिंगिरीडी य, नंदावत्ते य विंछिये।
डोले य भिंगिरीडी य, विरिली अच्छिवेहए।।३४
अच्छिले माहए अच्छिरोडए विचित्तचित्तए।
उहिंजलिया जलकारी य, तंनिया तंबगाइया।।३५
इह चउरिंदिया एए, ऽणेगहा एवमायओ।
लोगस्स एगदेसंमि, ते सव्वे परिकित्तिया।।३६

—उत्त० अ० ३६, गा० १४५ से १४९

चतुरिन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये हैं— पर्याप्त और अपर्याप्त। अन्धक, पौतिक, मक्षिका, मशक, भ्रमर, कीट, पतंग, बगाई और कुकण, कर्कुट, सिंगरीटी, नन्द्यावर्त, बिच्छू, खड-मकड़ी, भृंगरीटक, अक्षिवेधक, अक्षिक, मागध, अक्षिरोडक, विचित्र, चित्रपत्रक, उपधि, जलका, जलकारी, तन्निक, ताम्रक आदि को चार इन्द्रियवाले जीव माना है। ये सब लोक के एक भाग में स्थित है (न कि सर्वत्र)।

पंचिंदिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया।
नेरइया तिरिक्खाय, मणुया देवा य आहिया।।३७

—उत्त० अ० ३६, गा० १५५

जो जीव पंचेन्द्रिय है, वे चार प्रकार के कहे गये हैं— नारकीय, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।

नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तसू भवे।
रयणाभ—सक्कराभा, वालुयामा य आहिया।।३८
पंकामा य धूमाभा, तमा तमतमा तहा।
इइ नेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ।।३९

—उत्त० अ० ३६, गा० १५६ से १५७

नारकी जीव सात प्रकार के हैं क्योंकि नरक से सम्बद्ध पृथ्वियाँ सात प्रकार की हैं। वे इस प्रकार है— (१) रत्नप्रभा, (२) शर्कराप्रभा,

(३) वालुकाप्रभा, (४) पंकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमप्रभा और (७) तमतमाप्रभा।

विवेचन– पहली नरक की अपेक्षा दूसरी नरक में और दूसरी नरक की अपेक्षा तीसरी नरक में इस प्रकार उत्तरोत्तर हर नरक में अधिक अन्धकार होता है। जबकि सातवीं नरक तमतमा नाम की हैं, अतः वहाँ घोर अन्धकार होता है।

पंचिंदिय तिरिक्खा उ, दुविहा ते वियाहिया।
संमुच्छिम–तिरिक्खा उ, गब्भवक्कंतिया तहा।।४०

–उत्त० अ० ३६, गा० १७०

पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव दो प्रकार के कहे गये है– संमूर्च्छिम और गर्भोत्पन्न गर्भज।

विवेचन– संमूर्च्छिम जीव मनःपर्याप्ति के अभाव में मूढदशा में रहते हैं। वे कुछ पदार्थों में उत्पन्न होते हैं जबकि गर्भोत्पन्न गर्भ से उत्पन्न होते हैं।

दुविहा वि ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तहा।
नहयरा य बोधब्बा, तेसिं भेए सुणेह मे ।।४१

–उत्त० अ० ३६, गा० १७१

इन दोनों प्रकार के तिर्यंच जीवों के तीन भेद हैं– (१) जलन्चर, (२) स्थलचर और (३) नभचर अर्थात् खेचर।

मच्छा य कच्छभा य, गाहा य मगरा तहा।
सुंसुमारा य बोधब्बा, पंचहा जलराहिया ।।४२

–उत्त० अ० ३६, गा० १७२

जलचर जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं– (१) मच्छ (मछलियों की जाति), (२) कच्छप (कछुए की जाति), (३) ग्राह (घड़ियाल की जाति), (४) मगर और (५) संसुमार (ह्वेलआदि की जाति)।

चउप्पया य परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे।
चउप्पया चउव्विहा, ते मे कित्तयओ सुण ।।४३

–उत्त० अ० ३६, गा० १७९

स्थलचर जीव दो प्रकार के हैं- चतुष्पद और परिसर्प। इनमें चतुष्पद चार प्रकार के हैं। इनके भेद मेरे द्वारा सुनो।

एगखुरा दुखुरा चेव, गंडीषय सणप्पया।
हयमाई गोणमाई, गयमाई सीहमाइणो।।४४

—उत्त० अ० ३६, गा० १८०

(१) एक खुरवाले–अश्व आदि। (२) दो खुरवाले–गाय आदि। (३) गण्डीपद–हाथी आदि और (४) सनखपद–सिंह आदि।

भुओरगपरिसप्पा य, परिसप्पा दुविहा भवे।
गोहाई अहिमाई, इक्केक्का इणेगविहा भवे।।४५

—उत्त० अ० ३६, गा० १८१

परिसर्प दो प्रकार के होते हैं- (१) भुजपरिसर्प–गोह, गिरगीट आदि। और (२) उर-परिसर्प-सर्प, अजगर आदि ये प्रत्येक भी अनेक प्रकार के होते हैं।

चम्मे उ लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया।
वियपक्खी य बोधव्वा, पक्खिणो य चउव्विहा ।।४६

—उत्त० अ० ३६, गा० १८८

खेचर अर्थात् पक्षी चार प्रकार के होते हैं– (१) चर्मपक्षी–चमड़े की पंखवाले, चमगादर आदि। (२) रोमपक्षी–रोमवाली पंख वाले, राजहंस आदि। (३) समुद्गपक्षी–आवेष्ठित पंखवाले और (४) विततपक्षी-जिनके पंख सदा खुले रहते हैं। ये दोनों मानुषोत्तर पर्वत से बाहर होते हैं।

मणुया दुविहभेया उ, ते मे कित्तयओ सुण।
संमुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कंतिया तहा।।४७

—उत्त० अ० ३६, गा० १९५

मनुष्य के दो भेद है, वे मेरे द्वारा सुनो- सम्मूर्छिम और गर्भोत्पन्न।

विवेचन– मनुष्य के देश, रंग और जाति के अनुसार भेद होते हैं।

देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण।
भोमिज्ज—वाणमंतर—जोइस—वेमाणिया तहा।।४८

—उत्त० अ० ३६, गा० २०४

देव चार प्रकार के कहे गये हैं। उनके भेद मेरे द्वारा सुनो। (१) भुवनपति। (२) वाणव्यंतर, (३) ज्योतिष और (४) वैमानिक।

दसहा उ भवणवासी, अट्ठहा वणचारिणो।
पंचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ।।४९

—उत्त० अ० ३६, गा० २०५

भवनवासी के दस प्रकार हैं, वाणव्यन्तर अर्थात् वनचारी देवों के आठ प्रकार हैं, ज्योतिषी देवों के पाँच प्रकार है और वेमानिक देवों के दो प्रकार।

असुरा नाग-सुवण्णा, विज्जू अग्गी वियाहिया।
दीवोदहि-दिसा-वाया, थणिया भवणवासिणो।।५०

—उत्त० अ० ३६, गा० २०६

भवनपति के दस प्रकार इस तरह समझने चाहिये— (१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार (४) विद्युतकुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) वायुकुमार और (१०) स्तनितकुमार।

पिसाय-भूया जक्खा य, रक्खसा किंनरा य किंपुरिसा।
महोरगा य गंधव्वा, अट्ठविहा वाणमंतरा ।।५१

—उत्त० अ० ३६, गा० २०७

वाणव्यंन्तर देवों के आठ भेद इस प्रकार बताये गये हैं—

(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किम्पुरुष, (७) महोरग और (८) गन्धर्व।

चंदा सूरा य नक्खत्ता, गहा तारागणा तहा।
दिसविचारिणो चेव, पंचहा जोइसालया।।५२

—उत्त० अ० ३६, गा० २०९

ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं– (१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) नक्षत्र, (४) ग्रह और (५) तारा। ये सब मनुष्यलोक में चर है अर्थात् गतिमान है और मनुष्यलोक के बाहर स्थिर है अर्थात् गति नहीं करते।

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।

कष्पोवगा य बोधव्वा, कप्पाईया तहेव य ।।५३

–उत्त० अ० ३६, गा० २०९

वैमानिक देव दो प्रकार के हैं– (१) कल्पोत्पन्न और (२) कल्पातीत।

कप्पोवगा य वारसहा, सोहम्मीसाणगा तहा।

कणंकुमार-माहिंदा, बंभलोगा य लंतगा ।।५४

महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तहा।

आरणा अच्चुया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा ।।५५

–उत्त० अ० ३६, गा० २१०-२११

कल्पोत्पन्न वैमानिक देव बारह प्रकार के हैं– (१) सौधर्म (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्म (६) लांतक, (७) महाशुक्र (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और (१२) अच्युत।

कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया।

गेविज्जाणुत्तरा चेव, गेविज्जा नवविहा तहिं।।५६

–उत्त० अ० ३६, गा० २१२

कल्पातीत देव दो प्रकार के बताये गये हैं– (१) ग्रैवेयक और (२) अनुत्तर।

विवेचन– ग्रंवेयक देव नौ प्रकार के हैं।

विजया वेजयंता य, जयंता अपराजिया।

सव्वट्ठसिद्धगा चेव, पंचहाणुत्तरा सुरा ।।५७

–उत्त० अ० ३६, गा० २१५-२१६

अनुत्तरविमानों के पाँच प्रकार है– (१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध।

विवेचन– संसारीजीवों का यह स्वरूप जानने से जीव-सृष्टि कितनी व्यापक है और उसके कितने विभाग है आदि का बोध होता है। ठीक वैसे ही अहिंसा के पालनार्थ भी इसका ज्ञान होना निहायत आवश्यक है।

कर्मवाद :

नो इंदियगेज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो।
अज्झत्थहेउं नियस्स बंधो,
संसारहेउं च वयंति बंधं ।।१

–उत्त० अ० ३६, गा० १९

आत्मा अमूर्त है, अतः वह इन्द्रियग्राह्य नहीं है। अमूर्त्त होने के कारण ही आत्मा नित्य है। मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा को कर्मबन्धन होता है और कर्मबन्धन को ही संसार का कारण कहा जाता है।

विवेचन– जिसमें वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श हो वहीं वस्तु मूर्त्त हो सकती है; परन्तु आत्मा में वर्ण, रस, गन्ध अथवा स्पर्श आदि नहीं है, इसलिये वह अमूर्त्त है और यहीं कारण है कि वह इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य नहीं है। साथ ही अमूर्त वस्तु नित्य होती है, जैसे कि आकाश, इस प्रकार आत्मा नित्य है। ऐसी अमूर्त्त और नित्य आत्मा को कर्मबन्धन होने का मूल कारण मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, आदि दोष ही है। कर्म फल भोगने के लिये आत्मा को संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है, इसलिये कर्मबन्धन ही संसारवृद्धि का कारण है।

सर्व प्रथम आत्मा कर्मरहित था और बाद में कर्मबन्धन हुआ, ऐसा नहीं है। यदि हम यह मान लें कि शुद्ध आत्मा को भी कर्म का बन्धन होता है तो सिद्ध जीवों को भी कर्म-बन्धन का प्रसंग आता है,

जो कतइ उचित नहीं है। अतः यह मानना ही उचित होगा कि आत्मा आरम्भ से ही कर्मयुक्त थी और कर्मबन्धन के कारण विद्यमान होने से ही कर्मयुक्त थी और कर्मबन्धन के कारण विद्यमान होने से वह कर्म बाँधती ही रही तथा उसका फल भोगती रही। सोना जब खदान में रहता है, तब मिट्टी से युक्त रहता है। अर्थात् खदान में सोना और मिट्टी दोनों का मिश्रण होता है। बाद में उस पर रासायनिक प्रक्रिया होने से मिट्टी पृथक हो जाती है और शुद्ध सोना पृथक् निकल आता है, ठीक यहीं बात आत्मा के बारे में भी समझनी चाहिये। संयम, तप आदि रासायनिक क्रिया के कार्यकलाप से आत्मा पर लिपटे हुए कर्मावरण दूर हो जाते है उसका शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है।

सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छद्दिसागयं।
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बज्झगं।।२

—उत्त० अ० ३३, गा० १८

सभी जीव अपने आसपास छहों दिशाओं में स्थित कर्मपुद्गलों को ग्रहण करते हैं और आत्मा के सर्वप्रदेशों के साथ सर्वकर्मों का सर्वप्रकार से बन्धन हो जाता है।

विवेचन— कर्मरूप में परिणत होने योग्य पुद्गल की एक प्रकार की वर्गणा को कार्मण-वर्गणा अथवा कर्मपुद्गल कहा जाती है। पुद्गल की वर्गणाएँ अनेक प्रकार की होती है, उनमें औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, भाषा, श्वासोच्छवास, मन और कार्मण–इन नामों वाली ८ अयोग्य + ८ योग्य यों सोलह वर्गणाएं विशेषतः समझने योग्य हैं। वे इस प्रकार है—

१. औदारिक शरीर के लिये नहीं ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।
२. औदारिक शरीर के लिए ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।
३. औदारिक वैक्रिय शरीर के लिये नहीं ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

४. वैक्रिय शरीर के लिये ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

५. वैक्रिय आहारक शरीर के लिये नहीं ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

६. आहारक शरीर के लिये ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

७. आहारक तैजस शरीर के लिये ग्रहण न करने योग्य महावर्गणा।

८. तैजस शरीर के लिये ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

९. तैजस शरीर और भाषा के लिये ग्रहण नहीं करने योग्य महावर्गणा।

१०. भाषा के लिये ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

११. भाषा और श्वासोच्छवास के लिये ग्रहण न करने योग्य महावर्गणा।

१२. श्वासोच्छवास के लिये ग्रहण करने के योग्य महावर्गणा।

१३. श्वासोच्छवास और मन के लिये ग्रहण न करने योग्य महावर्गणा।

१४. मन के लिये ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

१५. मन और कर्म के लिये ग्रहण न करने योग्य महावर्गणा।

१६. कर्म के लिये ग्रहण करने योग्य महावर्गणा।

इस सोलहवीं वर्गणा को ही कार्मण वर्गणा कहा जाता है ये कार्मण वर्गणाएँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधः आदि छहों दिशाओं में सर्वत्र व्याप्त रहती है। इन्हीं में से आत्मा उपर्युक्त वर्गणाओं को ग्रहण कर लेती है और वह आत्मा के सर्वप्रदेशों के साथ सर्वप्रकार से अर्थात् प्रकृति से, स्थिति से, रस से और प्रदेश से इस तरह चारों प्रकार से बंध जाती है। यहाँ इतना स्मरण रखना चाहिये कि आत्म-प्रदेशों के केन्द्र में जो आठ रुचक प्रदेश होते हैं, वे सदा निर्मल होते हैं। उन्हें किसी प्रकार के कर्म का बन्धन नहीं होता।

जमियं जगई पुढो जगा,

कम्मेहिं लुप्पन्ति पाणिणो।

सयमेव कडेहिं गाहई,

णो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं।।३

—सू० श्रु० १, अ० २, उ० १, गा० ४

इस भूतलपर जितने भी प्राणी हैं, वे सब अपने अपने संचित कर्मों के कारण ही संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं और स्वकृत कर्मों के अनुसार ही भिन्न-भिन्न योनियों में पैदा होते हैं। उपार्जित कर्मों का फल भोगे बिना प्राणी मात्र का छुटकारा नहीं होता।

विवेचन— जीव के उत्पत्ति-स्थान को योनि कहते है। योनियों की संख्या ८४ लाख इस प्रकार मानी जाती है—

पृथ्वीकाय की योनि	७ लाख
अप्काय की योनि	७ लाख
तेजस्काय की योनि	७ लाख
वायुकाय की योनि	७ लाख
प्रत्येक वनस्पति काय की योनि	१० लाख
साधारण वनस्पतिकाय की योनि	१४ लाख
दो इन्द्रियवाले जीवों की योनि	२ लाख
तीन इन्द्रियवाले जीवों की योनि	२ लाख
चार इन्द्रियवाले जीवों की योनि	२ लाख
देवताओं की योनि	४ लाख
नारकीयों की योनि	४ लाख
तिर्यंच पंचेन्द्रियों की योनि	४ लाख
मनुष्यों की योनि	१४ लाख
	८४ लाख

ये योनियाँ प्रधान रूप से नौ प्रकार की है— (१) सचित्त, (२)अचित्त, (३) सचित्ताचित्त, (४) शीत, (५) उष्ण, (६) शीतोष्ण,

(७) संवृत्त (८) विवृत्त, और (९) संवृत्त-विवृत्त। इनमें जो जीवप्रदेश वाली योनि है वह सचित्त, जीवप्रदेश से रहित है वह अचित्त, और जो दोनों के मिश्रणवाली है वह सचित्ताचित्त। जिसका स्पर्श शीतल-ठंडा है वह शीत, गर्म है वह उष्ण, और कुछ भाग में शीत और कुछ भाग में उष्ण हो वह शीतोष्ण। जो ढँकी हुई हो वह संयुक्त और जो खुली है वह विवृत्त तथा जो कुछ अंश में ढँकी हुई और कुछ अंश में खुली हो वह संवृत्त-विवृत्त।

अन्य सम्प्रदाय भी ८४ लाख योनि की मान्यता रखते हैं, किन्तु उनकी गणना अन्य प्रकार से करते हैं।

अस्सिं च लोए अदु वा परत्था,
सयग्गसो वा तह अन्नहा वा।
संसारमावन्न परं परं ते,
बंधंति वेदंति य दुन्नियाणि ।।४

—सू० श्रु० १, अ० ७, गा० ४

किये गये कर्म, इस जन्म में अथवा अगले जन्म में ही सहीं जिस तरह भी किये गये हो वे उसी तरह से अथवा अन्य प्रकार से फल देते हैं। संसार में भ्रमण करता हुआ जीव मानसिक, वाचिक और कायिकादि दुष्कृतों के कारण निरन्तर नये नये कर्म बाँधता ही रहता है तथा उनका फल भोगता है।

क्रमशः

गृहस्थ धर्म

पू० श्री जवाहरलालजी म. सा.

१—आंशिक मैथुन सेवन से हानि

मैथुन के किसी भी एक अंग के सेवन से अर्थात् आंशिक रूप में ब्रह्मचर्य खण्डित होने से मैथुन का सर्वांग में सेवन और ब्रह्मचर्य का नाश होना स्वाभाविक है क्योंकि मैथुन के किसी भी एक अंग के सेवन से एक न एक इंद्रिय दुर्विषय-लोलुप बनेगी ही, और किसी भी एक इन्द्रिय के दुर्विषयलोलुप बन जाने पर सभी इन्द्रियाँ दुर्विषय-लोलुप बन जाती हैं। उदाहरण के लिये, यदि कान स्त्री शब्द में सुख मानते हैं, तो नाक उनके शरीर की गन्ध में, जीभ उनसे संभाषण करने में, नेत्र उनका रूप देखने में और त्वचा उनका स्पर्श करने में सुख मानेगी। क्योंकि-

इन्द्रियाणां तु सर्वेषांम् यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्त क्षरति प्रज्ञा द्दतेः पादादिवोदकम्।।

(मनुस्मृति अ० २)

जिस प्रकार जल की मशक में एक भी छेद हो जाने पर फिर उसमें जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय के विषय-लोलुप बनने पर बुद्धि नष्ट हो जाती है।

बुद्धि के नष्ट होने पर इन्द्रिय-संयम कहाँ? स्वभावतः विषय-प्रिय इन्द्रियाँ फिर तो दुर्विषयों की ही ओर दौड़ती हैं। बुद्धि के नष्ट हो जाने से इन्द्रियाँ निरंकुश हो जाती है और फिर आत्मा को दिन-प्रतिदिन पतन की ही ओर अग्रसर करती हैं। नष्टबुद्धि इन्द्रियों के वश होकर, यह सिद्धान्त मानने लगता है—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्काम हेतुकम्।।

(गीता अ० १६)

जगत् असत्य, निराधार और अनीश्वर है। यह यो ही बना है। काम के सिवा इस संसार के बनने का दूसरा क्या हेतु हो सकता है?

इस सिद्धान्त को मानकर फिर—

ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्

(गीता अ० १६)

तात्पर्य यह है कि मैथुन के किसी एक भी अंग के सेवन से अर्थात् एक भी इन्द्रिय की दुर्विषय-लोलुपता से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है और अब्रह्मचर्य पूर्ण-रूपेण अपना आधिपत्य जमा लेता है।

२—अब्रह्मचर्य की निन्दा और उससे हानि

संक्षिप्त में अब्रह्मचर्य से तात्पर्य है—दुर्विषयभोग, मैथुन, या वीर्य का खण्डित करना। जैन-शास्त्रों ने ही नहीं, किन्तु अन्य ग्रन्थकारों ने भी इस अब्रह्मचर्य की लौकिक और लोकोत्तर दोनों ही दृष्टियों से बड़ी निन्दा की है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में अब्रह्मचर्य को चौथा अधर्म-द्वार मानते हुए कहा है—

जम्बू! अबंभं सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स पत्थणिज्जं पंकपणगपासजालभूयं थीपुरिसनपुंसवेदचिंधं, तवसंजमबंभचेरविग्धं, भेदायतणबहुपमायमूलं, कायरकापुरिससेवियं, सुयणजणवज्जणिज्जं, उड्ढनिरयतिरियतिलोक्कपइट्ठाणं, जरामरणरोगसोगबहुलं, वधबंधविघातदुव्विधायं, दंसणचरित्तमोहस्स हेउभूयं, चिरपरिगयमणुगयं दुरंतं।

हे जम्बू! चौथा अधर्म-द्वार अब्रह्मचर्य है। देव, असुर, मनुष्य, लोकपति आदि इस अब्रह्मचर्य-रूपी कीचड़ की दलदल में फंसे हुए हैं। देव, असुर, मनुष्यादि को यह जाल के समान फंसाने वाला है। पुरुषों के लिए यह नपुंसकत्व का कारण है। तप, संयम ब्रह्मचर्य के लिए विघ्नरूप है, अर्थात् इन्हें नाश करने वाला है। विषय कषाय आदि प्रमादों का मूल है। इन्द्रियों के समीप जो कायर तथा कापुरुष हैं, उन लोगों द्वारा सेवित एवं सज्जनों द्वारा निन्दित वर्ज्य है। तीनों लोक में अप्रतिष्ठित एवं जरा मृत्यु रोग शोक की वृद्धि करने वाला है। वध, बन्धन, आघात तथा दर्शन-मोहनीय और चरित्र-मोहनीय कर्म का हेतु है। प्राणियों को इसका परिचय दीर्घकाल से है, इसलिए इसका अन्त करना कठिन है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में, आगे अब्रह्मचर्य के तीस नाम बताते हुए यह बताया गया है कि बड़ी-बड़ी ऋद्धि वाले चक्रवर्ती तथा माण्डलिक राजाओं की भी इससे अतृप्ति रही है। इसकी निन्दा करते हुए इसी सूत्र में आगे कहा है—

मेहुणसन्नापगिद्धा य मोहभरिया सत्थेहिं हणंति एक्कमेक्कं विसयविसउदीरएसु अबरे परदारेहिं हम्मंति............

मैथुन में लिप्त ब्रह्मचर्य के अज्ञान से भरे हुए लोग परस्पर एक दूसरे की घात करते हैं। विष देकर मार डालते हैं। यदि परदारा हुई तो उस स्त्री का पति जारपति का घात करता है। इस प्रकार अब्रह्मचर्य मृत्यु का कारण है। अब्रह्मचर्य से धन और स्वजन का नाश होता है एवं परदारा में गृद्ध स्त्री-मोह से परिपूर्ण घोड़े, हाथी, बैल, भैंसे, मृग आदि पशु परस्पर लड़कर मर जाते हैं और अपनी संतान तक का घातकर डालते हैं। इसी प्रकार पशु और मनुष्य भी परस्पर युद्ध करते हैं।

अब्रह्मचर्य के कारण मित्रों में भी वैर-भाव उत्पन्न हो जाता है। अब्रह्मचर्य से सिद्धान्त द्वारा प्ररूपित चारित्र रूपी मूल गुण का भेदन हो जाता है। श्रुत-चारित्र-धर्म में रत जीव भी स्त्री-संग से अपयश तथा अकीर्ति को प्राप्त होते हैं। अब्रह्मचर्य से शरीर रोगी बना रहता है और अन्त में शीघ्र ही मृत्यु के मुख से पड़ना पड़ता है। अब्रह्मचर्य से पर स्त्री गमन के कारण कितने ही जीव बंधन में पड़ते हैं और मारे जाते हैं। अब्रह्मचर्य के मोह से पराभव को पाये हुए जीव इस प्रकार दुर्गति के अधिकारी बनते हैं।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में आगे यह भी बताया गया है कि अब्रह्मचर्य के कारण स्त्रियों के लिये कैसे कैसे महान संग्राम हुए हैं। स्त्रियों के लिये होने वाले संग्रामों का वर्णन करने के पश्चात् प्रश्नव्याकरण सूत्र में लिखा है–

इहलोए ताव नट्ठा परलोए य नट्ठा महया मोहतिमिसंधयारे धोरे तसथावरसुहूमवादेरसु य पज्जत्तमपज्जत्त साहारणसरीरपत्तेयसरीरसु य....

इन्द्रियों का दुर्विषय भोग रूप मैथुन, इस लोक में बन्धनकर्त्ता और परलोक में अनिष्टकारी है। महा मोह-रूप अन्धकार का स्थान है। त्रस, स्थावर, सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त आदि पर्यायों से चतुर्गतिरूप संसार में विशेष समय तक और बारम्बार परिभ्रमण कराने वाले मोहनीय कर्म का बर्द्धक है।

एसोसो अबंभस्स फलविवागो इहलोइओ परलोइओ अपसुओ बहुदुक्खो महब्भयओ बहुपयप्पगाढो दारुणो कक्कसो असाओ बाससहस्सेहिं मुच्चती न य अवेदयित्ता अत्थि हु मोक्खोति।

इस प्रकार अब्रह्मचर्य का फल इस लोक तथा परलोक में अल्प सुख और महान दुःख है। अब्रह्मचर्य महाभय का स्थान, कर्मरूपी रज

से गाढ़ी तरह घिरा हुआ एवं दारुण कर्कश और बिना भोगे न छूटने वाले कर्मों को बांधने वाला है।

गीता में अब्रह्मचर्य की निम्नप्रकार से निन्दा की है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महा पाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।।
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनाम्।।

(गीता अध्याय ३)

मनुष्य को पाप के रास्ते ले जाने वाले रजोगुण से उत्पन्न काम और क्रोध ही हैं। वे भुखमरे या पेटू महापापी और शत्रु हैं। जिस प्रकार आग धुएं से ढंकी रहती है, कांच मैल से धुंधला दीखता है और गर्भ का बालक झिल्ली से ढंका रहता है, उसी प्रकार सारा संसार काम से ढका हुआ है। यानी जिसमें काम न हो जो काम से परे हो– वह संसार से भी परे है। हे अर्जुन! कभी तृप्त न होने वाली यह काम रूपी आग आत्मा की सदा की वैरिन है। ज्ञानियों के ज्ञान को भी वह ढांक देती है। इस काम के ठहरने की जगह इन्द्रिय, मन और बुद्धि है। यह इन्हीं के सहारे ज्ञान को ढाक कर मनुष्य को मोहित करता है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।।

(गीता अध्याय १६)

काम, क्रोध और लोभ, ये तीनों नरक के द्वार और आत्मा का नाश करने वाले हैं। इसलिये इन तीनों को त्याग देना चाहिये।

इस प्रकार अब्रह्मचर्य की सबने निन्दा की है। परलोक-सम्बन्धी जो हानियां इससे होती हैं, उनका वर्णन तो किया ही गया है लेकिन इस लोक में भी इससे अनेक हानियां हैं। इससे होनेवाली समस्त हानियों का वर्णन करना कठिन है।

३—अब्रह्मचर्य से हिंसा

अब्रह्मचर्य या मैथुन से हिंसा का महान् पाप भी होता है। भगवती सूत्र में, गौतम स्वामी के प्रश्न करने पर, भगवान् ने कहा है कि जिस प्रकार रूई से भरी हुई नली में तप्त लोहे की सलाई से रूई का नाश होता है उसी प्रकार कामाचार सेवन करने वाला, स्त्री-योनि के जन्तुओं का नाश करता है। ये जन्तु सन्नी पंचेन्द्रिय हैं और उनकी संख्या अधिक से अधिक नव लाख है। इन नव लाख जीवों के सिवा संमूर्छित जीवों की तो गिनती ही नहीं है। इस प्रकार एक बार के मैथुन से अनेक जीवों की हिंसा का पाप होता है।

स्त्री योनि में जीव होते हैं, इस बात को दूसरे लोग भी मानते हैं। वात्सायन काम-सूत्र का टीकाकार और रति-रहस्य का कर्त्ता भी स्त्री योनि में जीव होना स्वीकार करता है। स्त्री योनि में जीव हैं, तो मैथुन से उनका नाश होना और हिंसा का पाप लगना स्वाभाविक है। इसलिये अहिंसा व्रत की रक्षा की दृष्टि से भी अब्रह्मचर्य त्याज्य है।

ब्रह्मचर्य—व्रत :

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात् क्षणभंगुरात्
कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम्।
न खलु नरके हाराक्रान्तं धनस्तनमण्डलं
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम्।।

— भर्तृहरि

हे बुद्धिमानो! क्षणिक और नाशवान् स्त्री-संग के सुख को छोड़कर मैत्री, करुणा और प्रज्ञा (ज्ञान) रूपी स्त्री का साथ करो। नरक

में जब ताड़ना होगी, तब स्त्रियों के हार-भूषित स्तनमण्डल और घुंघरूदार करधनी से शोभित कमर सहायता न करेंगे।

१—ब्रह्मचर्य व्रत का अर्थ :

अब्रह्मचर्य से निवृत्त होकर, ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रतिज्ञा करने का नाम **ब्रह्मचर्य व्रत** है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा पालन करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं।

२—ब्रह्मचर्य को व्रत रूप में क्यों स्वीकारना चाहिये?

कहा जा सकता है कि **प्रतिज्ञा-रूप व्रत स्वीकार किये बिना ही, यदि ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय, तो क्या हर्ज है? यदि कोई हानि नहीं है तो फिर ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा करने यानी व्रत धारण करने की क्या आवश्यकता है?** इसका उत्तर यह है कि संकल्प-हीन कार्यों की पूर्ति में सन्देह ही रहता है। संकल्प यानी व्रत या प्रतिज्ञा कर लेने पर, कार्य में होने वाली बाधाओं को सहने की शक्ति आती है, मन में दृढ़ता रहती है और **प्रतिज्ञा से भ्रष्ट न हो जाऊँ!** इस बात का भय रहता है। इसके सिवा व्रतरूप धारण किये बिना ब्रह्मचर्य पालन से परलोक सम्बन्धी जो लाभ होना चाहिये, वह लाभ भी नहीं होता। जैनशास्त्रों में तो इस बात का प्रतिपादन है ही, लेकिन अन्य ग्रन्थों में भी यहीं बात कहीं गई है। जैसे—

संकल्पेन बिना राजन् यत्किंचित् कुरुते नरः।
फलस्याप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयं भवेत्।।

— पद्मपुराण

हे राजन्! संकल्प के बिना जो कुछ किया जाता है, उसका फल बहुत थोड़ा होता है और उस कार्य के धर्म का आधा भाग नष्ट हो जाता है।

किसी भी शुभ कार्य को करने के लिये संकल्प का होना अत्यावश्यक है और परलोक के लिये हितकारी नियमों के पालन का संकल्प ही व्रत कहलाता है। यद्यपि व्रत-रूप धारण किये बिना भी

ब्रह्मचर्य का पालन करना बुरा नहीं है–अच्छा ही है–लेकिन ब्रह्मचर्य पालन से, जो पारलौकिक लाभ प्राप्त होना चाहिये, वह लाभ ब्रह्मचर्य को व्रत-रूप स्वीकार किये बिना, पूर्णतया प्राप्त नहीं होता। इन बातों को दृष्टि में रखकर ब्रह्मचर्य को व्रत-रूप स्वीकार करना उचित है। ब्रह्मचर्य को व्रत-रूप स्वीकार करने से किसी प्रकार की हानि नहीं है। हाँ, लाभ अवश्य हैं, जो ऊपर बताये जा चुके हैं।

३–ब्रह्मचर्य व्रत अपरिग्रह से अलग क्यों है?

भगवान् महावीर से पूर्व, बाईस तीर्थंकरों के शासनकाल में ब्रह्मचर्य नामक व्रत अलग न था। उस समय अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ये चार ही व्रत थे। चार व्रत होने पर ब्रह्मचर्य का पालन तो होता ही था, लेकिन ब्रह्मचर्य व्रत अपरिग्रह व्रत के ही अन्तर्गत हो जाता था और परिग्रह के त्याग में स्त्री आदि का भी त्याग समझा जाता था। यद्यपि अपरिग्रह-व्रत में ब्रह्मचर्य-व्रत का भी समावेश हो जाता है और परिग्रह के त्याग में अब्रह्मचर्य का भी त्याग हो जाता है, परन्तु भगवान् महावीर ने अपने समय के एवं भविष्य के वक्र जड़ मनुष्यों को दृष्टि में रखकर, ब्रह्मचर्य व्रत का अलग ही उपदेश दिया। भगवान पार्श्वनाथ तक चार ही व्रत थे और भगवान् महावीर ने पाँच व्रतों का उपदेश दिया। इस बात को लेकर भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के मुनि श्री केशीस्वामीजी और भगवान् महावीर के शिष्य श्री गौतम स्वामीजी में चर्चा हुई, जिसका विस्तृत वर्णन श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २३ वें अध्ययन में है।

४–ब्रह्मचर्य व्रत के दो भेद :

शास्त्रकारों ने सुविधा की दृष्टि से ब्रह्मचर्य-व्रत के दो भेदकर दिये हैं। एक सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत और दूसरा देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत। सर्वविरति ब्रह्मचर्य व्रत उसे कहते हैं, जिसमें जीवन भर के लिये मैथुन से निवृत्त होने, वीर्य अक्षत रखने और सभी प्रकार के काम-भोग न भोगने की प्रतिज्ञा की जावे। इतना ही नहीं, जिन कार्यों से ब्रह्मचर्य-व्रत दूषित

बने, वे सभी कार्य त्यागकर नव-वाड़ों का पालन किया जाय। इस व्रत को स्वीकार करने वाला सर्वविरति-पूर्ण ब्रह्मचारी कहलाता है। ऐसा पूर्ण ब्रह्मचारी मन, वचन और काय से वैक्रिय तथा औदारिक शरीर सम्बन्धी काम-भोगों को न भोगता है, न भोगवाता है, न भोगने वाले को अच्छा ही समझता है। सर्वविरत ब्रह्मचारी अठारह प्रकार के काम भोगों को त्यागकर ब्रह्मचर्य का पूर्ण रीति से पालन करने की प्रतिज्ञा करता है। सर्वविरत ब्रह्मचर्य का अन्य ग्रन्थकारों ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य नाम दिया है।

देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत उसे कहते हैं, जिसमें स्व-स्त्री की मर्यादा रखी जाय। इस स्थान पर सर्वविरति-ब्रह्मचर्य व्रत का ही वर्णन किया जाता है। देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत का वर्णन आगे किया जाएगा।

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कौन कर सकते हैं, इसके लिये आचार्य कहते हैं—

शक्यं ब्रह्मव्रतं घोरं, शूरैश्च न तु कातरैः।
करिपर्याणमुद्वोढुं, करिभिर्नतु रासभैः।।

ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना, शूरों के लिये ही शक्य है; कायरों के लिये नहीं; जैसे कि हाथी का पलान, हाथी ही उठा सकता है, गधा नहीं उठा सकता।

५—सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कौन कर सकता है?

सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन, संसार-त्यागी साधु ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं कर सकता। संसार-व्यवहार में रहने वाले सभी मनुष्य, एकदम से संसार-व्यवहार नहीं छोड़ सकते; इसलिये संसार-व्यवहार में रहने वालों के लिये देशविरति ब्रह्मचर्य व्रत बतलाया गया है। इस प्रकार गृहत्यागियों के लिये सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत है और गृहस्थियों के लिये देशविरति ब्रह्मचर्य-व्रत।

६—ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार करने से लाभ :

इन्द्रियाँ पाप से नहीं, पुण्य से मिली हैं। पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों

को पुण्य की ओर लगाना ही उचित है, न कि पाप की ओर। जब इन पुण्य से मिली हुई इन्द्रियों द्वारा धर्म का लाभ लिया जा सकता है, तब इनसे पाप क्यों किया जाय? इन्द्रियों द्वारा काम-भोग भोगना, पुण्य से प्राप्त इन्द्रियों को पाप में प्रवृत्त करना है। इन्द्रियों की सार्थकता तभी है, इनके मिलने का लाभ तभी है, जब इन्हें असंयम में न लगाया जाकर, संयम में रखा जाय। इनके द्वारा दुर्विषय भोगना इन्द्रियों का दुर्विषय में लिप्त होना उसी प्रकार नाशकारी है, जिस प्रकार पतंग के लिये दीपक की लौ से मोह करना नाशकारी है। पतंग केवल आँखों के विषय-रूप पर मोहित होने से नष्ट हो जाता है तो जिनकी पाँचों इन्द्रियाँ दुर्विषय-लोलुप हों, वे नष्ट क्यों न होंगे? इन्द्रियों को दुर्विषयभोग में लगाने से, दुर्विषय-लोलुप बनाने से–नाश अवश्यम्भावी है। इसलिये काम-भोग के दुष्परिणामों से बचने के वास्ते सर्वविरति ब्रह्मचर्य-व्रत को स्वीकार करना और पालन करना उचित है।

मोक्ष की आराधना के लिये चारित्र-धर्म के अन्तर्गत भगवान् ने जिन पाँच महाव्रतों को बताया है, उनमें से यह सर्वविरति-ब्रह्मचर्य चौथा महाव्रत है। मोक्ष प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार करना और पालन करना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य व्रत के बिना अन्य व्रत मोक्ष के लिये पूर्ण रूपेण सार्थक नहीं होते, न ब्रह्मचर्य के अभाव में अन्य व्रत, भली-भांति आराधे ही जा सकते हैं।

क्रमशः

हरिश्चन्द्र–तारा

आत्म-विक्रय :

तारा–नाथ, आपको धन्य है। अब आप इस पुत्र को सभालिये। बिकी मैं हूँ, यह नहीं बिका है।

पुत्र को पति के हाथ में सौंप, पति को प्रणाम कर, जैसे ही रानी चलने को हुई, वैसे ही रोहित चिल्ला उठा और दौड़कर माता से चिपटकर कहने लगा–माँ तुम कहाँ जाती हो? मैं तुम्हारे ही साथ चलूँगा। मुझे छोड़कर मत जाओ, मैं तुम्हारा रोहित हूँ।

पुत्र के ये शब्द, माता के हृदय में क्या भाव उत्पन्न कर सकते हैं, यह बात सभी जानते हैं। तारा के हृदय में भी वहीं बात हुई लेकिन उन्होंने धैर्य धारण करके कहा बेटा, मैं इन ब्राह्मण महाराज की सेवा करने जाती हूँ, तुम अपने पिता के पास रहकर उनकी सेवा करना।

रोहित– माँ, मैं पिता की सेवा करना नहीं जानता। मैं तो उन्हें प्रणाम करना जानता हूँ, सो प्रणाम किये लेता हूँ। मैं तुम्हारी सेवा करूँगा और जब तुम पिता की सेवा करना सिखला दोगी, तब पिता की सेवा करूँगा।

तारा ने जब देखा, कि रोहित किसी प्रकार भी पति के पास न रहेगा और कदाचित रह भी गया, तो पति को इसके पालन-पोषण में कष्ट होगा, तब उसने ब्राह्मण से प्रार्थना की, कि महाराज! यह बालक मुझे नहीं छोड़ता है। यदि आप आज्ञा दें, तो मैं इसे भी साथ ले लूँ।

ब्राह्मण– मैं, घर में अकेला नहीं हूँ, किन्तु मेरे यहाँ पुत्र, पुत्र-वधू

आदि भी हैं। मैंने, तुम्हें उनसे पूछकर नहीं खरीदा है, इसलिए इसी बात की चिन्ता है, कि वे लोग इस विषय में मुझे न मालूम क्या कहे। अब, यदि इसे और साथ लोगी, तो इसके हठ करने, रोने आदि के कारण समझाने-बुझाने, तथा इसके खिलाने-पिलाने आदि में, तुम्हारा बहुत सारा समय जायेगा और तुम काम न कर सकोगी। इसके सिवा, मैं तुम्हें भी खाने को दूँ और इसे भी खाने को दूँ, इस प्रकार दो मनुष्यों का भोजन-व्यय क्यों सहन करूँ?

ब्राह्मण की अन्तिम बात सुनकर, राजा मन ही मन कहने लगे सत्य तू अच्छी कसौटी कर रहा है। जिस बालक के सहारे से सैकड़ों लोग भोजन करते थे, आज उसी बालक का भोजन भी भार हो रहा है।

ब्राह्मण की बात के उत्तर में रानी कहने लगीं—महाराज्, यह बालक बड़ा ही विनीत है। हठ करना या रोना तो यह जानता ही नहीं है। आप स्वयं बुद्धिमान हैं, इसके लक्षणों से ही जान सकते हैं, कि यह बालक कैसा होनहार है। इसके लिए मैं आपसे पृथक् भोजन न लूँगी, आप मेरे लिए जो कुछ देंगे, उसी में से खाकर, यह भी आपका कुछ काम करता रहेगा। कृपा करके आप इसे ले चलने की आज्ञा दे दीजिए।

ब्राह्मण ने देखा, कि जब यह इसके लिए और भोजन भी न लेगी, बल्कि अपने ही भोजन में से खिलायेगी और यह लड़का बिना भोजन लिये ही मेरा काम भी करेगा, तब साथ चलने को कहने में क्या हर्ज है? इस प्रकार विचार करके, ब्राह्मण ने रानी को आज्ञा दी, कि तुम उसे अपने साथ ले चल सकती हो। ब्राह्मण की स्वीकृति पा, पुत्र को लेकर रानी ब्राह्मण के साथ चल दी। राजा, खड़े-खड़े तबतक उन्हीं की ओर देखते रहे, जबतक वे आँख से ओझल न हो गई, लेकिन रानी ने राजा की ओर घूमकर इसलिए न देखा कि इन्हें मेरे घूमकर देखने में अधिक दुःख होगा।

जाते समय, रानी ने मन-ही-मन यह अवश्य कहा, कि हे संसार की स्त्रियों! मेरी दशा से तुम लोग कुछ शिक्षा ग्रहण करो। मैं, वहीं तारा हूँ, जो कुछ दिन पहले एक विशाल-राज्य के महाराजा की रानी थी। मैंने, पति के वचन की रक्षा के लिए ही, राज-सुख त्यागकर कष्ट सहे हैं और अब दासत्व स्वीकार किया है। इतना ही नहीं, यदि इससे भी विशेष कष्ट हो तो सहन करूँगी। आज, यदि मैं राज्य-सुख के कारण गृहस्थी के कार्यों को न जानती होती या जानकर भी करने में लज्जा या आलस्य करती, तो अपने पति की सहायता कभी न कर पाती। आप लोग भी धन-वैभव के मद में स्त्रियोंचित-कार्यों में कभी लज्जा या आलस्य न करे, अन्यथा आपका जीवन तो कष्टमय होगा ही, लेकिन आप सत्य का भी पालन न कर सकेंगी। इसके सिवा, पति के सत्य की रक्षा के लिए अपने प्राण तक देने में संकोच न करें। आप लोग यदि इस बात का ध्यान रखेंगी, तो अपने धर्म का भी पालन करेंगी और संसार में अक्षय कीर्ति भी प्राप्त करेंगी।

रानी ने, यद्यपि राजा को बहुत कुछ धैर्य दिया था, और राजा ने धैर्य धारण भी किया था, लेकिन रानी के आँखों से ओझल होते ही, राजा का धैर्य छूट गया। रानी को दासी बनाना पड़ा, इस दुःख से वे कातर हो उठे और मूर्छित होकर गिर पड़े। पुत्र का वियोग भी उन्हें असह्य हो उठा वे, भूमि पर पड़कर उसी प्रकार तड़फने लगे, जैसे जल से बाहर निकाली जाने पर मछली तड़फती है।

विश्वामित्र ने, राजा की इस दुःखावस्था से लाभ उठाना उचित समझा। उनका अनुमान था, कि इस समय यदि मैं राजा से ऋण का तकाजा करके, इसे कुछ कटु वाक्य कहूँगा और दूसरी ओर अपराध स्वीकार करने से लाभ का लोभ दूँगा, तो सम्भव है, यह अपना अपराध स्वीकार कर ले। इस प्रकार विचार कर, विश्वामित्र अपने वाग्वाण द्वारा

हरिश्चन्द्र के दुःखित हृदय को और भी छेदने लगे। वे, कहने लगे– अरे निर्लज्ज! सूर्य अस्त होना चाहता है, तुझे शेष ऋण देने की चिन्ता नहीं है? यदि स्त्री पुत्र इतने प्रिय थे, यदि तू दक्षिणा नहीं दे सकता था तो फिर तूने किस बल पर हठ की थी? अब, या तो तू मेरी शेष स्वर्ण मुद्राएँ सूर्यास्त के प्रथम दे दे, अन्यथा अपनी हठ छोड़कर अपराध स्वीकार कर ले। अपराध स्वीकार करता हो, तो मैं ये पाँचसौ मुहरें भी लौटाता हूँ, जिससे रानी को फिर छुड़ा ले शेष पाँच सौ मुहरें भी छोड़ता हूँ और तेरा राज्य भी तुझे लौटाता हूँ।

विश्वामित्र ने, ये बातें कहीं तो थी और अभिप्राय से, लेकिन फल कुछ और ही हुआ। विश्वामित्र तो विचारते थे, कि मेरा इन बातों से राजा सत्य छोड़ना स्वीकार कर लेगा, लेकिन विश्वामित्र की इन बातों ने, राजा को एक प्रकार की शक्ति प्रदान की। वे, रानी की अन्तिम शिक्षा को याद करके खड़े हो गये और विश्वामित्र से कहने लगे–आप और जो चाहे, कटु-वचन कहें, लेकिन सत्य छोड़ने को कदापि न कहें।

परित्यजेच्च त्रैलोक्यं, राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिकमंतेभ्यां, न तु सत्य कथंचन।।
त्यजेच्च पृथिवीं गन्ध, मापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रू!, वायुःस्पर्शगुणं त्यजेत्।।
प्रभां समुत्सृजेदर्को घूमकेतुस्तथोष्मतां।
त्यजेच्छब्दं तथा काशं सोमःशातांशुतां त्यजेत्।।
विक्रम वृत्रहा जह्यात्, धर्म जह्याच्च धर्मराट्।
नन्वहं सत्यमुत्स्त्रष्टुं, व्यवसेय कथंचन।।

अर्थात्– त्रैलोक्य के राज्य पर लात मारना स्वर्ग-साम्राज्य को परित्याग करना, एवं इनसे भी बढ़कर कोई वस्तु हो, तो उसे भी परित्याग करना मुझे स्वीकार है, परन्तु सत्य से विलग होना मुझे

कदापि स्वीकार नहीं हो सकता। पृथ्वी, जल, वायु, ज्योति, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ये सब अपने गुण और अपनी प्रकृति को चाहे छोड़ दें, परन्तु मैं सत्य को किसी भी प्रकार न छोड़ूँगा।

महाराज, जिस सत्य के लिये मैंने राज्य देने में भी संकोच न किया, जिस सत्य के लिये स्त्री-पुत्र सहित मैंने वन के कष्ट सहे, जिस सत्य के लिए मैं मजदूर और रानी मजदूरनी बनी, जिस सत्य के लिये मेरी स्त्री बाजार में दासी बनकर बिकी और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा, उस सत्य को क्या अब पाँचसौ मुद्राओं के ऋण से भीत हो, जाने दूँगा? इतने कष्ट तो सह लिये और अब जरा से कष्ट के लिए, क्या मैं अपना सत्य छोड़ सकता हूँ? ऋषिजी, आप ठहरिए, मैं आज सूर्यास्त के पहले ही ऋण चुका दूँगा। कैसे चुकाऊँगा, इसके लिए रानी मुझे मार्ग बता गई हैं, मैं उसी मार्ग का अवलम्बन करूँगा।

विश्वामित्र को, इस प्रकार उत्तर देकर, महाराज हरिश्चन्द्र, रानी के छोड़े हुए घास को अपने सिर पर रख, बाजार में घूम-घूमकर आवाज देने लगे–कि मैं दास हूँ, कोई मुझे खरीद लो।

विशाल शरीर वाले और सुन्दर दास को बिकते देख, बाजार के लोगों के हृदय में वैसा ही आश्चर्य हुआ, जैसा रानी को बिकते देखकर हुआ था। इन लोगों ने राजा से उसी प्रकार प्रश्न किये, जैसे रानी से किये थे; लेकिन राजा ने यही उत्तर दिया, कि मैं दास हूँ, मेरी जात-पाँत मेरा निवासस्थान आदि क्या पूछना? हाँ, यह मैं अवश्य बताये देता हूँ, कि संसार में पुरुषोचित जितने भी कार्य हैं, मैं उन सबको जानता हूँ।

राजा ने, यद्यपि सब काम जानना और करना स्वीकार किया, लेकिन पाँच सौ मुहरे देकर उन्हें खरीदना किसी को भी उचित न जँचा। सब लोक मूल्य अधिक बताकर मुँह बिचकाते हुए चल दिये।

दास-दासी के व्यवसाय के बाजार में, एक भंगी, इन लोगों के आने से पहले से ही खड़ा था। वह रानी के बिकने का हाल देख चुका था और

राजा तथा विश्वामित्र की आपस में जो बाते हुई थी उन्हें भी सुन चुका था। वह मन ही मन विचारता था, कि कैसे अच्छे दास दासी बिकते हैं, परन्तु ये लोग मेरे यहाँ चलना क्यों स्वीकार करेंगे? इसी विचार से वह रानी के बिकने के समय नहीं बोला था और इसी विचार से अब भी चुप है।

लोगों के इस प्रकार चुपचाप बिना मूल्य लगाये चले जाने से, राजा को बड़ी निराशा हुई। वे, चिन्ता करने लगे, कि क्या मुझे कोई न खरीदेगा? क्या आज सूर्यास्त के पहले मैं अपना ऋण न चुका सकूँगा? यदि ऐसा हुआ, तो इस कलंक को रखने के लिए मुझे कहीं स्थान भी न मिलेगा।

भंगी खड़ा खड़ा उन लोगों की मूर्खता को धिक्कारता था, जो राजा का मूल्य अधिक बताकर चले गये थे। वह, इस बात का निश्चय न कर सका, कि यह दास मेरे साथ चलेगा; या नहीं? चले या न चले, मैं तो अपनी ओर से पूछ लूँ, ऐसी दृढ़ता धारण करके, भंगी राजा के पास आ कहने लगा— महाराज, मैं भंगी हूँ, मेरे यहाँ श्मशान की रखवाली का काम है। यदि आप मेरे यहाँ चलना स्वीकार करे तो मैं आपको खरीद लूँ।

भंगी की बात सुनकर, राजा को रानी की बातों का स्मरण हो आया, जो उन्होंने जाते समय राजा से कही थी। राजा मन में कहने लगे, कि रानी मुझसे कहती ही थी, कि यदि मुझे भंगी खरीदता, तो मैं उसके यहाँ भी चली जाती। जब वह भंगी का दासीत्व स्वीकार करने को तैयार थी, तो मुझे भंगी का दासत्व स्वीकार करने में क्या हर्ज है? मैं, सत्य के हाथ बिक रहा हूँ, भंगी के हाथ नहीं।

इस प्रकार विचार कर राजा ने भंगी से कहा, कि मुझे आपका दासत्व स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं। आप जो आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करूँगा। आप, मुझे खरीद लीजिए और मेरा मूल्य इन ऋषि को चुका दीजिए।

राजा को भंगी के हाथ बिकने को तैयार देख, विश्वामित्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उनकी यह अन्तिम आशा भी निराशा में

परिणत हो गई। राजा का मूल्य न लगने से, विश्वामित्र विचारते थे, कि अब सूर्यास्त में थोड़ा ही समय बाकी है, राजा को कोई खरीदता नहीं है, अतः विवश होकर वह अपना अपराध स्वीकार कर लेगा। लेकिन, जब राजा भंगी का दासत्व करने पर भी उतारू हो गया, तब तो विश्वामित्र की सारी आशा मिट्टी में मिल गई। उन्होंने एक बार और प्रयत्न करना उचित समझा। वे राजा से कहने लगे—क्या भंगी के हाथ बिकेगा।

राजा—मुझे, इस बात को नहीं देखना है, कि मैं किसके हाथ बिक रहा हूँ। मैं तो यह देखता हूँ, कि आपके ऋण से मुक्त हो रहा हूँ। इसके सिवा—

विद्या विनय सम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शूनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

अर्थात् जो पण्डित यानी ज्ञानी हैं, उनकी दृष्टि विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल पर एक सी रहती है।

इसके अनुसार ब्राह्मण हो या चाण्डाल, सत्य पालन में मेरे समीप दोनों ही बराबर है।

विश्वामित्र- देख, हरिश्चन्द्र, अभी कुछ भी नहीं बिगड़ा है। अब भी समझ जा और अपनी हठ छोड़कर अपराध स्वीकार कर ले। अपराध स्वीकार करने पर, इन सब विपत्तियों से भी छुटकारा मिलेगा और तेरा राज्य भी तुझे वापस मिलता है।

राजा— बस महाराज, क्षमा कीजिए। आप जैसों की कृपा से ही सत्यपालन का यह स्वर्ण-अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। ऐसे अवसर को खोने की मूर्खता, मुझसे न होगी।

राजा के इस उत्तर को सुनकर, विश्वामित्र क्रोध करते हुए बोले- अच्छा, ला मुहरें। अभी तुझे नहीं मालूम पड़ता है, लेकिन आगे मालूम होगा, कि हठ का परिणाम कितना भयंकर होता है।

विश्वामित्र और हरिश्चन्द्र की बातों से भंगी समझ गया, कि यह दास कोई शिष्ट पुरुष हैं, लेकिन किसी कारण विशेष से अपने आपको

बेंच रहा है। विश्वामित्र के **ला** कहते ही, उसे भी आवेश हो आया। उसने, विश्वामित्र को पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ देकर राजा से पूछा कि क्या और दूँ? यदि और भी दिलाना चाहते हो तो अधिक भी देने को तैयार हूँ। हरिश्चन्द्र ने कहा–बस इतनी ही। विश्वामित्र जब मुहरें ले चुके, तब राजा ने हाथ जोड़कर विश्वामित्र से कहा कि महाराज, अब तो मैं आपके ऋण से मुक्त हुआ, अब कृपा करके आशीर्वाद दीजिए। मैं, आपसे यहीं आशीर्वाद चाहता हूँ कि अवध की प्रजा को कष्ट न हो।

विश्वामित्र, राज्य लेने के समय से ऊपर से तो क्रोध प्रकट कर रहे हैं, लेकिन हृदय से तो राजा की प्रशंसा करके उसे धन्यवाद ही देते हैं। हरिश्चन्द्र की इस बात ने तो, उनके हृदय को और भी नम्र बना दिया। वे, मन-ही-मन कहने लगे–हरिश्चन्द्र, तुझे धन्य है। तूने भंगी का दासत्व स्वीकार किया, लेकिन सत्य को छोड़ना स्वीकार न किया। तुझे, जितना भी धन्यवाद दिया जाय कम है।

विश्वामित्र का ऋण चुकजाने पर राजा को वैसी ही प्रसन्नता हुई, जैसी प्रसन्नता सिर का बोझ उतरने से होती है। उन्होंने परमात्मा को धन्यवाद दिया, कि हे प्रभो! तेरी ही कृपा से मैं सत्यपालन में समर्थ हुआ हूँ।

हरिश्चन्द्र के ऋण मुक्त होते ही, सूर्य अस्त हो गया। सन्ध्या की लालिमा चारों ओर इस तरह फैल गई, मानों हरिश्चन्द्र की कीर्ति ने आपना रंग फैलाया हो। उसी समय, पश्चात्ताप करते हुए विश्वामित्र एक ओर चले गये और प्रसन्न मन से महाराजा हरिश्चन्द्र अपने स्वामी के साथ दूसरी ओर चल दिए।

क्रमशः

मोह रहित मनुष्य दुःख मुक्त है।

B C JAIN JEWELLERS
Since 1926

B.C. JAIN JEWELLERS PVT. LTD.

22, Camac Street
3rd floor, Block-A
Kolkata - 700 007
Phone : 2283-6203/6204/0056
Fax : 2283-6643
Resi : 2358-6901,2359-5054

THITTHAYARA
Vol XXXIII No.10
25th January 2010

Registered
No. KOL.RMS / 070/2010-12
R.N.I. 30181/77

सभी प्राणियों के लिये मनुष्य जन्म मिलना दुर्लभ होता है,
क्योंकि बुरे कर्मों का फल निश्चय ही मिलता है
अतः मनुष्य को क्षण भर भी प्रमाद न कर
शुभ कार्यों में तत्पर रहना चाहिये।

Kamal Singh Rampuria

Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 2666-7212/7225